

**बिहार में जाति राजनीति का इतिहास**Aman<sup>1\*</sup>, Dr Harendra Kumar Singh<sup>2\*\*</sup>

1. Research Scholar,

2. Associate Professor

\* Faculty of Social Science (Department of History), Purnea University, Purnia, Bihar, India

\*\* K.B Jha Colleges, Katihar, Purnea University, Purnia, Bihar, India

Corresponding Author: Aman

Email address:- amangov1995@gmail.com

**सार:** बिहार में जातिगत राजनीति के इतिहास को पूर्ण न्याय देने के लिए शायद कई पुस्तकों की आवश्यकता होगी। कई आम लोगों के लिए, राज्य से नहीं, यह इतिहास लालू प्रसाद यादव के उदय के साथ शुरू होता है और समाप्त होता है। यह स्पष्ट रूप से असत्य है। जैसे ही 2020 के बिहार चुनाव के परिणाम घोषित होने वाले हैं, यहाँ एक ऐसा पेपर है जो 1920 के जनेयू आंदोलन और त्रिवेणी संघ से शुरू होकर, राम मनोहर लोहिया, जयप्रकाश नारायण और कर्पूरी ठाकुर जैसे समाजवादी नेताओं के माध्यम से लालू प्रसाद यादव के निर्माण और उसके बाद नीतीश कुमार के उदय तक, इस महत्वपूर्ण इतिहास को दर्ज करने की चुनौती लेता है।

[Aman and Singh, H.K. **बिहार में जाति राजनीति का इतिहास**. *The International Journal of Interpretation, Observation and Analysis*, 2025; Volume 2, Issue 1:17-23 (April-June). ISSN 2349-0713, Peer-reviewed (online/offline), Refereed, Indexed and International Journal (Since 2013), Global Impact Factor: 5.776

**Keywords:** राजनीति, बिहार, जनेयू आंदोलन

**परिचय:** 2020 के बिहार राज्य विधानसभा चुनावों के लिए वोटों की गिनती और घोषणा की पूर्व संध्या पर और उसी दिन, यह अनुमान लगाया जा सकता है कि अधिकांश बातचीत और विश्लेषण बिहार में जातिगत राजनीति के इर्द-गिर्द घूमेगा, विशेष रूप से लालू प्रसाद यादव के बेटे तेजस्वी यादव के नेतृत्व वाले राजनीतिक गठबंधन के प्रकाश में, जो मुख्यमंत्री पद के दो दावेदारों में से एक है। जब भी बिहार में 'पिछड़े' और 'निचले' जाति के आंदोलनों के इतिहास की बात होती है, विशेष रूप से अंग्रेजी मीडिया और सोशल मीडिया के विमर्श में, तो इस तरह की बातचीत नब्बे के दशक में लालू प्रसाद यादव के उदय तक, कर्पूरी ठाकुर और 'जेपी आंदोलन' के संक्षिप्त उल्लेख के साथ, एक ब्लैक होल में डूबने से पहले होती है।

यही कारण है कि हमने आज पेपर 'बिहार में जाति की राजनीति: राकेश अंकित के ऐतिहासिक निरंतरता में' को प्रस्तुत करने के लिए चुना है, जो राज्य में जाति की राजनीति के इतिहास को 1920 के जनेयू आंदोलन से जोड़ता है, जिसमें यादवों और अन्य निचली जातियों को ब्राह्मणवादी धागा पहनकर खुद को संस्कृत करते देखा गया और यादव, कुर्मी और कोएरी जातियों और उनके उच्च जाति के विरोधियों के बीच हिंसक संघर्ष हुआ।

1920 के दशक के जनेयू आंदोलन के साथ-साथ-"गतिशीलता के लंबे मार्ग पर पहला आधुनिक मील का पत्थर"-जिसने यादवों के लिए मार्ग प्रशस्त किया (बिहार में सबसे अधिक संख्या में-एफ. जी. बेली का सुझाव है-धन और भूमि के अधिग्रहण के बाद, संस्कृतकरण को सामाजिक व्यवस्था में अपनी स्थिति बढ़ाने के तरीके के रूप में देखा) कुर्मी और कोएरी, मोमीन आंदोलन का उदय हुआ जिसने "सैयदों, शेखों

और पठानों के प्रभुत्व को चुनौती दी"। अंकित इस अवधि के दौरान "वर्ग अभिविन्यास" के बजाय "जाति अभिविन्यास" के वर्चस्व की ओर इशारा करते हैं, जिसने "उच्च अभिजात वर्ग के प्रभुत्व वाले राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन और कृषि समुदायों और पिछड़ी जातियों के सामाजिक आंदोलन के बीच संघर्ष को बढ़ावा दिया"। बाद के आंदोलन ने किसान सभा, यादव महासभा, मोमीन सम्मेलन और त्रिवेणी संघ जैसे निकायों में अभिव्यक्ति पाई। अंकित ने 1933 में जन्मे त्रिवेणी संघ को "विभिन्न जाति-आधारित किंवदंतियों और मिथकों से 'पिछड़े' लोगों के लिए एक व्यापक राजनीतिक विचारधारा को मजबूत करने और तैयार करने का पहला कदम" और "स्वतंत्र राजनीतिक दबाव लागू करने और उच्च जाति के वर्चस्व के प्रति कांग्रेस की उदासीनता के विरोध में एक स्वायत्त राजनीतिक दल बनाने का पहला प्रयास" कहा।

1967 के बाद के चार वर्षों में "बिहार में पिछड़ी जातियों के पांच मुख्यमंत्री (सीएम), दो अनुसूचित जाति के सीएम" थे। "हालांकि", अंकित लिखते हैं। इन 'पिछड़ी जाति/अनुसूचित जाति के मंत्रियों' का विलय राजनीतिक समझौते का परिणाम था और इससे सामाजिक लाभ में कोई बदलाव नहीं आया। शिक्षा मंत्री के रूप में कर्पूरी ठाकुर का स्कूल और कॉलेज के पाठ्यक्रम से अंग्रेजी को समाप्त करने के साथ-साथ उच्च शिक्षा संस्थानों में इसकी आवश्यकता को समाप्त करने का निर्णय एक अपवाद था, जिसके कारण "ग्रामीण क्षेत्रों और पिछड़ी जातियों के छात्रों की आमद के साथ उच्च शिक्षा संस्थानों की सामाजिक संरचना में नाटकीय बदलाव आया और 'पिछड़ों के बीच आगे' (यादव, कुर्मी, कोरी) का उदय हुआ।

1972 में हुए चुनावों में, बांग्लादेश युद्ध के बाद, कांग्रेस ने बिहार में वापसी की। इसके अलावा सत्तर के दशक की शुरुआत में, नक्सलवादी आंदोलन को बिहार में समर्थन मिला, जहां यह "लगभग 1976 तक जारी रहा, यहां तक कि पटना क्षेत्र के हरिजनों का नेतृत्व भी किया।" यह अस्सी के दशक की शुरुआत में भोजपुर, पटना, गया और औरंगाबाद में "एक नक्सलवादी क्षेत्र" में समाप्त हुआ।

लेकिन निर्णायक क्षण 1974 का जे. पी. (जयप्रकाश नारायण) आंदोलन था, जहाँ "1990 के दशक की राजनीति के बीज बोए गए थे" और जिसने "1990 के दशक के लगभग सभी बाद के राजनीतिक नेताओं" को जन्म दिया। अंकित लिखते हैं, "बिहार इंदिरा गांधी के शासन के खिलाफ सबसे बड़े राष्ट्रव्यापी छात्र आंदोलन का युद्धक्षेत्र बन गया था, जिसका नेतृत्व बिहार छात्र संघर्ष समिति ने किया था, जो कांग्रेस के खिलाफ शहरी मध्यम वर्गों के बीच लोकप्रिय अलगाव से पोषित था, और जनसंघ और संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी के छात्र मोर्चों द्वारा समर्थित था।"

### बिहार में जातिगत राजनीति का इतिहास

बिहार में जातिगत राजनीति के इतिहास को पूर्ण रूप से न्याय प्रदान करने के लिए संभवतः अनेक पुस्तकों की आवश्यकता होगी। अधिकांश बाहरी लोगों के लिए यह इतिहास केवल लालू प्रसाद यादव के उदय से प्रारंभ होकर वहीं समाप्त होता दिखाई देता है। किन्तु यह धारणा स्पष्टतः वास्तविकता से परे है।

जैसे ही 2020 के बिहार विधानसभा चुनावों के परिणाम घोषित होने वाले हैं, प्रस्तुत शोध-पत्र इस जटिल और व्यापक इतिहास को समग्रता से दर्ज करने का प्रयास करता है। इसका आरंभ 1920 के दशक में जनैऊ आंदोलन और त्रिवेणी संघ के गठन से होता है। इसके पश्चात् राम मनोहर लोहिया, जयप्रकाश नारायण तथा कर्पूरी ठाकुर जैसे समाजवादी नेताओं की भूमिका के माध्यम से इस यात्रा का विवरण प्रस्तुत किया गया है। यह क्रम लालू प्रसाद यादव के राजनीतिक उदय तथा उसके उपरांत नीतीश कुमार के नेतृत्व में बिहार की जातिगत राजनीति के पुनः स्वरूप ग्रहण करने तक विस्तृत है।

इस प्रकार, यह अध्ययन बिहार के जातिगत राजनीतिक इतिहास की जटिलताओं और इसके विभिन्न सामाजिक-राजनीतिक पड़ावों को समाहित करने का एक गंभीर प्रयास है।

### बिहार में जातिगत राजनीति का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

2020 के बिहार राज्य विधानसभा चुनावों की मतगणना और परिणामों की घोषणा की पूर्व संध्या तथा उसी दिन, यह अनुमान लगाया जा सकता था कि अधिकांश चर्चाएं और विश्लेषण बिहार में जातिगत राजनीति के इर्द-गिर्द केंद्रित

रहेंगे, विशेषकर तेजस्वी यादव के नेतृत्व वाले राजनीतिक गठबंधन के संदर्भ में, जो मुख्यमंत्री पद के दो प्रमुख दावेदारों में से एक थे।

जब भी बिहार में 'पिछड़ी' और 'निचली' जातियों के आंदोलनों के इतिहास पर चर्चा होती है, विशेषतः अंग्रेजी मीडिया और सोशल मीडिया के विमर्श में, तो यह चर्चा प्रायः 1990 के दशक में लालू प्रसाद यादव के उदय पर आकर सीमित हो जाती है। बीच में कभी-कभार कर्पूरी ठाकुर और 'जेपी आंदोलन' का संक्षिप्त उल्लेख होता है, किंतु फिर यह विमर्श एक प्रकार के शून्य में विलीन हो जाता है।

इसी पृष्ठभूमि में हमने आज 'बिहार में जाति की राजनीति: राकेश अंकित के ऐतिहासिक निरंतरता में' शीर्षक से प्रस्तुत शोध-पत्र का चयन किया है, जो राज्य में जातिगत राजनीति के इतिहास को 1920 के जनैऊ आंदोलन से जोड़ता है। इस आंदोलन में यादवों और अन्य निचली जातियों द्वारा ब्राह्मणवादी धागा धारण कर स्वयं को संस्कृत करने का प्रयास किया गया था तथा यादव, कुर्मी और कोइरी जातियों एवं उच्च जाति के विरोधियों के बीच संघर्ष भी देखने को मिला।

1920 के दशक का जनैऊ आंदोलन — जिसे "गतिशीलता के लंबे मार्ग पर पहला आधुनिक मील का पत्थर" कहा गया — यादव समुदाय के लिए एक महत्वपूर्ण मोड़ सिद्ध हुआ। एफ. जी. बेली के अनुसार, यादवों ने धन और भूमि के अधिग्रहण के बाद सामाजिक पदानुक्रम में ऊपर उठने के लिए संस्कृतिकरण का माध्यम अपनाया। इसी कालखंड में कुर्मी और कोइरी समुदायों ने भी अपनी सामाजिक स्थिति सुदृढ़ करने के प्रयास किए। इस समय मोमिन आंदोलन का भी उदय हुआ, जिसने सैयदों, शेखों और पठानों के वर्चस्व को चुनौती दी।

राकेश अंकित इस कालखंड को "वर्ग अभिविन्यास" के स्थान पर "जाति अभिविन्यास" की प्रधानता का युग बताते हैं। यह वह समय था जब उच्च जाति के प्रभुत्व वाले राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन और कृषि समुदायों एवं पिछड़ी जातियों के सामाजिक आंदोलनों के बीच संघर्ष तीव्र हुआ। इन आंदोलनों को किसान सभा, यादव महासभा, मोमिन सम्मेलन और त्रिवेणी संघ जैसे संगठनों के माध्यम से अभिव्यक्ति मिली।

अंकित त्रिवेणी संघ (1933) को 'विभिन्न जाति-आधारित किंवदंतियों और मिथकों से एक व्यापक राजनीतिक विचारधारा को गढ़ने' तथा 'उच्च जाति के प्रभुत्व के प्रति

कांग्रेस की उदासीनता के विरोध में एक स्वतंत्र राजनीतिक मंच खड़ा करने' के पहले गंभीर प्रयास के रूप में देखते हैं। 1967 के बाद के चार वर्षों में बिहार में 'पिछड़ी जातियों' के पाँच और 'अनुसूचित जातियों' के दो मुख्यमंत्री बने। हालांकि, अंकित के अनुसार, इन मंत्रियों का उदय मुख्यतः राजनीतिक समायोजन का परिणाम था, जिसने सामाजिक संरचना में कोई विशेष परिवर्तन नहीं लाया। एक अपवाद के रूप में, शिक्षा मंत्री के रूप में कर्पूरी ठाकुर द्वारा अंग्रेजी को स्कूल और कॉलेज के पाठ्यक्रम से हटाने तथा उच्च शिक्षा संस्थानों में इसकी आवश्यकता समाप्त करने के निर्णय ने ग्रामीण क्षेत्रों एवं पिछड़ी जातियों के छात्रों के उच्च शिक्षा में प्रवेश को सुगम बनाया। इससे 'पिछड़ों के बीच आगे' — यानी यादव, कुर्मी और कोइरी — का व्यापक उदय हुआ।

1972 के चुनावों में, बांग्लादेश युद्ध के पश्चात, कांग्रेस ने बिहार में पुनः सत्ता प्राप्त की। इसी अवधि में, बिहार में नक्सलवादी आंदोलन को भी व्यापक समर्थन मिला, जो लगभग 1976 तक, विशेष रूप से पटना क्षेत्र के हरिजन समुदायों के नेतृत्व में जारी रहा। अस्सी के दशक की शुरुआत तक भोजपुर, पटना, गया और औरंगाबाद जिलों को 'नक्सल प्रभावित क्षेत्र' माना जाने लगा।

किन्तु, बिहार की राजनीति में निर्णायक मोड़ 1974 में जयप्रकाश नारायण द्वारा शुरू किए गए 'जेपी आंदोलन' से आया, जिसने 1990 के दशक की राजनीति की नींव रखी। अंकित लिखते हैं कि "बिहार, इंदिरा गांधी के शासन के विरोध में खड़े देशव्यापी छात्र आंदोलन का प्रमुख युद्धभूमि बन गया था।" इस आंदोलन का नेतृत्व बिहार छात्र संघर्ष समिति ने किया, जिसे कांग्रेस विरोधी शहरी मध्यम वर्ग का समर्थन प्राप्त था और जिसे जनसंघ तथा संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी के छात्र मोर्चों का सहयोग प्राप्त था। इस आंदोलन ने 1990 के दशक के अधिकांश प्रमुख राजनीतिक नेताओं को जन्म दिया।

### 1920 और 1930 के दशक : जनेऊ आंदोलन और त्रिवेणी संघ

फ्रांसीसी फ्रेंकेल के शब्दों में, बिहार में "ब्राह्मणों, भूमिहारों और राजपूतों ने कम से कम एक हजार वर्षों तक समाज पर शासन किया," जब तक कि "उच्च शूद्रों, यादवों, कुर्मियों और कोइरी" द्वारा उस सत्ता को चुनौती नहीं दी गई। मुसलमानों में सर्वोच्च स्थान 'अशरफ' का था, जिसमें सैयद, शेख और पठान शामिल

थे—यह वर्ग मुख्यतः ज़मींदार था। इनके बाद 'रज़ील' या 'मजदूर वर्ग' आता था। इन सभी उच्च वर्गों ने मिलकर एक सम्मानित वर्ग का निर्माण किया, जबकि दूसरी ओर अहीर, मोमिन, चमार और जुलाहों जैसी जातियाँ थीं जिन्हें निम्न स्थान प्राप्त था।

राजनीतिक दृष्टि से, बिहार कायस्थ प्रांतीय सभा (1889), बिहार लैंडहोल्डर्स एसोसिएशन, बिहार प्रांतीय मुस्लिम लीग (1908), गोपाजातीय सभा (1909) और बाद में बिहार प्रदेश कांग्रेस कमेटी, अखिल भारतीय यादव महासभा (1923) तथा बिहार प्रदेश किसान सभा (1929) प्रमुख राजनीतिक मंच थे। सामाजिक ढांचे में मकान मालिक प्रमुख भूमिका निभाते थे और उसके बाद उनके किरायेदार आते थे। इस आर्थिक-सामाजिक ढांचे में चार प्रमुख हलचलें थीं —(क) सामाजिक वर्गीकरण, (ख) कृषि संकट, (ग) सामाजिक-धार्मिक सुधार, और (घ) राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन। इनमें जाति आंदोलन और संगठनों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

उपनिवेशवाद ने इन पहचानों को नया रूप दिया, लेकिन यह हस्तक्षेप मात्र था, न कि सृजन, और इस प्रकार इसकी जड़ें गहरी थीं।

स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान क्षेत्रीय सामाजिक आंदोलनों को उत्प्रेरणा मिली, किंतु नेतृत्व करने वाले उच्चवर्गीय अभिजात्य वर्ग ने सामाजिक पुनर्निर्माण के प्रति उदासीनता दिखाई और जाति के बहिष्करण की राजनीति को मजबूत किया।

इसी पृष्ठभूमि में, पिछड़ी और निचली जातियों के सशक्तिकरण की प्रक्रिया **जनेऊ आंदोलन** से प्रारंभ हुई। 1920 के दशक के प्रारंभ में यादवों और अन्य निचली जातियों ने ब्राह्मणवादी जनेऊ धारण कर संस्कृतिकरण का प्रयास किया, जिससे ब्राह्मणों ने प्रतिक्रिया स्वरूप प्रतिरोध किया। यादव, कुर्मी और कोइरी जातियों तथा उच्च जातियों के बीच हिंसक व अहिंसक टकराव हुआ। यह आंदोलन 1921 से 1925 के बीच अपने चरम पर था और बिहार की सामाजिक-राजनीतिक यात्रा में यह पहला आधुनिक मील का पत्थर था। यादव, जिन्हें गोलस और अहीर के नाम से भी जाना जाता था, बिहार में सबसे बड़ी संख्या में थे। वे किसान, चरवाहे और दुग्ध उत्पादक भी थे। कुर्मी और कोइरी भी बिहार की प्रमुख कृषक जातियाँ थीं। इस आंदोलन ने उत्तर और दक्षिण बिहार (छोटा नागपुर क्षेत्र को छोड़कर) के विभिन्न जिलों — जैसे पटना, मुंगेर, दरभंगा और मुजफ्फरपुर —को प्रभावित

किया। इसी समय मोमिन आंदोलन भी उभरा, जिसने सैयदों, शेखों और पठानों के प्रभुत्व को चुनौती दी।

भारत की 1921 की जनगणना रिपोर्ट ने यादवों के संस्कृतिकरण प्रयासों और उच्च जातियों की हिंसक प्रतिक्रिया को रेखांकित किया। रिपोर्ट ने निचली जातियों के सामाजिक उत्थान के प्रयासों का श्रेय उनकी जाति-आधारित सभाओं को दिया और उच्च जातियों के उत्पीड़न को संघर्ष का मुख्य कारण बताया।

**एफ. जी. बेली** के अनुसार, उस समय बिहार कृषि प्रधान और आर्थिक रूप से पिछड़ा हुआ था। वर्ग हित स्पष्ट रूप से परिभाषित नहीं थे और सामाजिक-राजनीतिक कारक आर्थिक परिस्थितियों से गहराई से जुड़े थे। रामकृष्ण मुखर्जी जैसे इतिहासकारों ने भी उच्च और निम्न जातियों के बीच गहरे विरोधाभासों का उल्लेख किया है। यहाँ "जाति अभिविन्यास"

प्रमुख था, और राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन तथा कृषि आधारित सामाजिक आंदोलनों के बीच संघर्ष की स्थिति थी।

**त्रिवेणी संघ**—जिसे 30 मई 1933 को शाहाबाद जिले के करगहर गांव में स्थापित किया गया —जनेऊ आंदोलन का संगठित परिणाम था। इस संघ ने यादव, कुर्मी और कोइरी जैसी पिछड़ी जातियों के बीच एक व्यापक राजनीतिक विचारधारा विकसित करने का कार्य किया। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (आई. एन. सी.), जो पहले से ही जातिगत गुटबाज़ी से जूझ रही थी, पिछड़ी जातियों की बढ़ती राजनीतिक आकांक्षाओं को समाहित करने में विफल रही। त्रिवेणी संघ कांग्रेस के उच्च जाति वर्चस्व और उदासीनता के विरोध में एक स्वतंत्र राजनीतिक दबाव समूह और स्वायत्त राजनीतिक मंच बनाने का पहला गंभीर प्रयास था। किंतु कांग्रेस नेतृत्व, विशेषकर डॉ. राजेंद्र प्रसाद, ने स्वीकार किया कि "हिंदुओं में रूढ़िवाद का वर्चस्व था।" 1934 से 1946 तक बिहार प्रदेश कांग्रेस समिति में किसी भी निचली जाति के व्यक्ति को प्रतिनिधित्व नहीं मिला।

इस दौरान, किसान सभा के बकशत संघर्षों ने जमींदारों के विरुद्ध लड़ाई लड़ी, जिसके सदस्यों की संख्या लगभग 2.5 लाख थी। 1937 में जगजीवन राम ने बिहार प्रांतीय खेत मजदूर सभा का गठन किया।

1972 के चुनावों से पहले "द सर्चलाइट" के एक संपादकीय में लिखा गया कि "जाति, लिंग की तरह, बिहार में एक फ्रायडीय प्रवृत्ति है, जहां राजनीति सहित सब कुछ इसके इर्द-गिर्द घूमता है।"

लालू प्रसाद यादव के उदय से पहले भी कांग्रेस नेताओं जैसे एस. के. सिंह, एम. पी. सिन्हा, ए. एन. सिन्हा और के. बी. सहाय ने जाति पहचान की राजनीति को बढ़ावा दिया था।

1930 से 1960 के दशक के बीच कांग्रेस भीतर गहरी गुटबाज़ी और विखंडन था, और नेतृत्व जाति आधारित गुटों के बीच संतुलन साधने का प्रयास था।

ब्राह्मण, भूमिहार, राजपूत और कायस्थ जातियाँ 1952 से 1962 तक कांग्रेस के 40 प्रतिशत से अधिक विधायकों पर हावी रहीं। अनुसूचित जातियों और मुसलमानों को 'वोट-बैंक' के रूप में नियंत्रित किया गया।

**बिहार राज्य पिछड़ा वर्ग संघ (1947), पिछड़ा वर्ग हिंदी साप्ताहिक, सर्वसाधारण वयस्क मताधिकार (1950, 1952)**

और **पिछड़ा वर्ग आयोग (1953-1955)** इस समय की जातिगत राजनीति के महत्वपूर्ण मील के पत्थर थे। बिहार भूमि सुधार अधिनियम (1950) ने अधिभोग किरायेदारों के बीच एक नया वर्ग उत्पन्न किया और 'जाति गठबंधन' के विकास में सहायता की, जिससे पारंपरिक सामाजिक पिरामिड को झटका लगा।

**कांग्रेस का पतन, उदय और ग्रहण (1967-1989)**

1967 के दशक में पहली बार पिछड़े वर्गों और जातियों के सामाजिक आंदोलनों ने सत्ता के गलियारों तक अपनी पहुँच बनाई। अगले चार वर्षों में, बिहार में पाँच पिछड़ी जातियों के मुख्यमंत्री, दो अनुसूचित जाति के मुख्यमंत्री तथा कांग्रेस के एकमात्र पिछड़ी जाति के मंत्री देखने को मिले। 1967 से 1972 के बीच बिहार में कुल नौ सरकारें बनीं, जिनमें से कुछ सरकारें केवल 3 और 9 दिनों के लिए ही चल सकीं।

हालाँकि, इन 'पिछड़ी जाति अनुसूचित जाति के मंत्रियों' का उदय केवल राजनीतिक समझौतों का परिणाम था और इससे सामाजिक लाभ में कोई ठोस परिवर्तन नहीं आया। इस कालखंड में पिछड़ी जातियों के लिए सबसे महत्वपूर्ण सामाजिक सुधार संकल्प सरकार (1967-69) के दौरान शिक्षा मंत्री कर्पूरी ठाकुर द्वारा किया गया, जिन्होंने स्कूलों और कॉलेजों के पाठ्यक्रम से अंग्रेजी शिक्षा को समाप्त कर उच्च शिक्षा संस्थानों में इसकी अनिवार्यता को भी खत्म कर दिया। इस निर्णय ने उच्च शिक्षा संस्थानों की सामाजिक संरचना में व्यापक परिवर्तन लाया, जिससे ग्रामीण क्षेत्रों और पिछड़ी जातियों के छात्रों की संख्या में वृद्धि हुई तथा 'पिछड़ों के बीच अग्रणी' (यादव, कुर्मी, कोइरीजातियों का उभार हुआ। (

इसके विपरीत, कांग्रेस पार्टी अब भी हरिहर सिंह, एल.एन. मिश्रा, दारोगा प्रसाद राय, केदार पांडे और अब्दुल गफूर जैसे जमींदार, शिक्षित और अनुबंधित अभिजात वर्ग के नेताओं के हाथों में थी। 1969 के विभाजन से पहले और बाद में भी कांग्रेस का बहुमत 'आगे' और 'ऊपर' वर्गों के हाथों में बना रहा।

लालू प्रसाद यादव द्वारा बिहार की राजनीति में जातीय ध्रुवीकरण लाए जाने से बीस वर्ष पहले ही जयप्रकाश नारायण ने (जेपी) 1974 में स्पष्ट कर दिया था कि बिहार में "इस समय तक बिहार "जाति सबसे बड़ी राजनीतिक पार्टी है, इंदिरा गांधी के शासन के विरुद्ध राष्ट्रव्यापी छात्र आंदोलन का केंद्र बन चुका था। बिहार छात्र संघर्ष समिति द्वारा संचालित यह आंदोलन कांग्रेस के विरुद्ध शहरी मध्यम वर्ग के असंतोष से पोषित था, जिसे जनसंघ और समाजवादी पार्टी के छात्र मोर्चों का समर्थन प्राप्त था। (एसएसपी)

जनवरी 1974 में 'भारतीय राष्ट्र' समाचार पत्र ने 'कमर तोड़ती महँगाई, आवश्यक वस्तुओं की भारी कमी, तेजी से बढ़ती मुद्रास्फीति, बढ़ती बेरोजगारी और आर्थिक ठहराव' की स्थिति पर चिंता जताई थी। यद्यपि विपक्षी दलों के पास नेतृत्व और संगठनात्मक क्षमता का अभाव था, फिर भी जेपी के नेतृत्व में यह आंदोलन एक राष्ट्रव्यापी जनआंदोलन में बदल गया। आरंभ में इसका आठ सूत्रीय एजेंडा था जिसमें छात्र संघों के अधिकार, व्यावसायिक शिक्षा की व्यवस्था, व्यवसाय हेतु बैंक ऋण, बेरोजगारी भत्ता, आवास, छात्रवृत्ति, प्रभावी छात्र प्रतिनिधित्व, मुद्रास्फीति पर नियंत्रण तथा सस्ती खाद्य व अध्ययन सामग्री की माँगें शामिल थीं।

1971 से 1981 के बीच बिहार ने 15 विधान पारित किए, लेकिन इसके मुकाबले औसतन 178 अध्यादेश लागू किए गए। 1966-67 से 1977-78 के बीच बिहार की आर्थिक विकास दर मात्र 2.5 प्रतिशत थी। तीन दशक से अधिक योजना प्रयासों के बावजूद बिहार देश के सबसे पिछड़े राज्यों में बना रहा।

यद्यपि 1974 का आंदोलन जातीय प्रश्नों पर केंद्रित नहीं था, फिर भी इसने सत्ता हस्तांतरण की प्रक्रिया को तेज किया और एक नई नेतृत्व पीढ़ी के लिए प्रशिक्षण का कार्य किया। जैसे स्वतंत्रता संग्राम पुरानी पीढ़ी के नेताओं के लिए प्रेरणा था, वैसे ही यह 'दूसरी स्वतंत्रता' का संग्राम बन गया।

हालाँकि, '1974 की त्रासदी' समकालीन टिप्पणीकारों द्वारा गहराई से रेखांकित की गई थी। फिर भी 1990 के दशक की

राजनीति के बीच 1970 के दशक के इस सामाजिक आंदोलन में ही बोल गए थे। जैसा कि कवि नागार्जुन ने कहा था — "बिहार का पतन आज की बात नहीं है। इतिहास आम जनता के लिए अदृश्य होता है, इसलिए वे उम्मीद खो बैठते हैं।"

1977 का चुनाव कांग्रेस के लिए एक आपदा साबित हुआ। कांग्रेस बिहार से लोकसभा की एक भी सीट नहीं जीत सकी और राज्य विधानसभा की 324 सीटों में से केवल 57 सीटों पर सिमट कर रह गई। लंबे समय से यह स्पष्ट था कि कांग्रेस, सत्ता की राजनीति में लिप्त होकर जनता से कट चुकी थी और उसका जनाधार अत्यंत कमजोर हो गया था। उसे केवल 23.5 प्रतिशत वोट प्राप्त हुए, जो अब तक का न्यूनतम स्तर था। इसके साथ ही, कांग्रेस विधायकों की जातिगत संरचना में भी बड़ा बदलाव देखने को मिला — यादव विधायकों (10) की संख्या पहली बार ब्राह्मण विधायकों (9) से अधिक हो गई थी, इसके बाद राजपूत (7), भूमिहार (6), कोइरी (4) और कुर्मी (2) विधायकों का स्थान था। यह परिवर्तन मैथिल

ब्राह्मण जगन्नाथ मिश्रा के 1975-77 के शासनकाल की पृष्ठभूमि में और अधिक स्पष्ट हो गया।

हालाँकि कांग्रेस को सत्ता से बाहर कर देने पर जनमानस में व्यापक उत्साह था, लेकिन सत्ता विरोधी राजनीति के खोखलेपन के खतरे को अनदेखा नहीं किया जा सकता था।

'जनता लहर' के खोखलेपन पर टिप्पणी करते हुए 'द सर्चलाइट' ने लिखा था, "जब तक संकीर्णता बनी रहेगी, सरकारें बदल सकती हैं लेकिन स्थितियाँ नहीं सुधरेगी।"

22 जून 1977 को कर्पूरी ठाकुर ने जनता पार्टी के मुख्यमंत्री के रूप में शपथ ली और 9 मार्च 1978 को उन्होंने बिहार राज्य सरकार की सेवाओं में अन्य पिछड़े वर्गों के (ओबीसी)

लिए 25 प्रतिशत आरक्षण लागू कर दिया। उनका दूसरा महत्वपूर्ण कदम पंचायत चुनाव कराना था, जो व्यापक चुनावी हिंसा के बीच संपन्न हुए। इन चुनावों ने स्थानीय सरकारों में उच्च जातियों के परंपरागत वर्चस्व को स्थायी रूप से समाप्त कर दिया।

हालाँकि, अप्रैल 1979 में ठाकुर सरकार गिर गई और राम सुंदर दास ने उनका स्थान लिया। दास के मंत्रिमंडल में 50 प्रतिशत से अधिक मंत्री उच्च जातियों से थे, किंतु वे भी अधिक समय तक नहीं टिक सके। जनवरी 1980 में इंदिरा गांधी सत्ता में लौट आई और 18 फरवरी 1980 को उन्होंने बिहार सरकार को बर्खास्त कर दिया।

राज्य में गैर कांग्रेसी ताकतें विभाजित थीं और कांग्रेस ने- बिहार में 167 सीटें और 34.17 प्रतिशत मत प्राप्त कर पुनः सत्ता में वापसी की। 1985 में कांग्रेस ने 196 सीटों और 38.62 प्रतिशत मतों के साथ अपनी स्थिति और सुदृढ़ कर ली। अनुसूचित जाति के विधायकों की संख्या भी क्रमशः 24 में से 48 और 33 में से 48 तक पहुँच गई, परंतु इसे कांग्रेस में अनुसूचित जातियों की स्थायी वापसी का संकेतक नहीं माना जा सकता।

वास्तव में, 1980 के दशक और विशेषकर 1988-89 के वर्षों ने चार मुख्यमंत्रियों के शासनकाल में अभूतपूर्व अराजकता, हिंसा, कुशासन और अवसरवादी वोट बैंक राजनीति के अनगिनत प्रकरण देखे। इन परिस्थितियों ने बिहार में कांग्रेस शासन के स्थायी ग्रहण का मार्ग प्रशस्त किया और कांग्रेस विरोधी ताकतों को आगे बढ़ने का अवसर प्रदान किया।

#### निष्कर्ष

आज बिहार लगभग 10 करोड़ की जनसंख्या का केंद्र है, जिसमें से 40 प्रतिशत लोग गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन कर रहे हैं और लगभग 90 प्रतिशत आबादी ग्रामीण परिवेश में रह रही है। इनका साझा सामाजिक विकास पथ 1793 में स्थायी बंदोबस्त के तहत जमींदारों की औपनिवेशिक संरचना से जुड़ा हुआ है। इस बंदोबस्त ने बिहार को ब्रिटिश शासनकाल में एक 'क्लासिक एन्क्लेव अर्थव्यवस्था' बनने की दिशा में अग्रसर किया। स्वतंत्रता के पश्चात बिहार ने 'माल दुलाई समानता योजना', 'जाति एवं वर्ग संघर्षों के विस्फोटक मिश्रण', 'जातीय शक्ति के हस्तांतरण' तथा 'अब तक हाशिए पर पड़े भौतिक लाभों', 'असंवैधानिक राज्य तंत्र और विकास में कटौती' जैसे जटिल संघर्षों का सामना किया। यहाँ के बड़े सामाजिक समूहों में लगभग 14 प्रतिशत द्विज जातियाँ, 39 प्रतिशत अन्य पिछड़ा वर्ग (जिसमें 20% ऊपरी ओबीसी, 19% निचले ओबीसी, 12% यादव, 3.5% कुर्मी, 4.1% कोइरी शामिल हैं), 15 प्रतिशत दलित तथा 16 प्रतिशत मुस्लिम आबादी शामिल है, जो जाति और वर्ग संघर्षों की निरंतरता में कार्य कर रहे हैं।

बिहार में इन सात दशकों की यात्रा की शुरुआत उच्च जातियों के प्रभुत्व वाले कांग्रेस के 'चरमपंथी सामाजिक गठबंधन' से हुई थी। इसके बाद अन्य पिछड़ा वर्ग (ओबीसी) समूहों का उदय और फिर उनका विखंडन हुआ, जिसका प्रतिनिधित्व कर्पूरी ठाकुर द्वारा किया गया। बाद में लालू प्रसाद यादव ने

इस प्रक्रिया को एक 'लोकतांत्रिक उथल-पुथल' और 'संकीर्ण-गरीब पुनर्वितरण गठबंधनों की जनमत राजनीति' के रूप में आगे बढ़ाया। वर्ष 2005 से नीतीश कुमार ने 'दलितों और उच्च जातियों के व्यापक-गरीब गठबंधन' का नेतृत्व किया। 2015 के बिहार विधानसभा चुनावों से यह स्पष्ट हुआ कि 'पहचान की राजनीति' विभिन्न दलों के जनसमूह जुटाने के प्रयासों का केंद्रीय विषय बनी रही।

वास्तव में, एक विचार यह भी है कि नीतीश कुमार द्वारा 'कल्याण और विकास' के प्रति दिखाई गई सरकारी प्रतिबद्धता और लालू प्रसाद यादव द्वारा 'न्याय, गरिमा और संसाधनों के वितरण' का एजेंडा एक-दूसरे के पूरक हैं। एक की जाति-आधारित राजनीति दूसरे की कार्यात्मक सामाजिक

इंजीनियरिंग के साथ मेल खाती है; 'दलित मुक्ति की राजनीति' के लिए इस इतिहास में महत्वपूर्ण संकेत निहित हैं। इस लेख में यह प्रदर्शित करने का प्रयास किया गया है कि

1989 के बाद प्राप्त चुनावी सफलताएँ और लालू प्रसाद यादव के नेतृत्व का उदय लोकतांत्रिक सशक्तिकरण और

'ब्राह्मणवादी सामाजिक व्यवस्था' के टूटने की प्रक्रिया की एक निरंतरता का प्रतीक हैं। यह भारतीय और विशेष रूप से बिहार की राजनीति में पहचान-आधारित प्रतिपादन की दिशा में एक और मील का पत्थर है।

बिहार हमेशा से एक गहराई से विभाजित सामाजिक संरचना द्वारा जकड़ा रहा है। 1937 से कांग्रेस पार्टी ने उच्च वर्गों को सत्ता के ढाँचे में शामिल कर, अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य पिछड़े वर्गों के लिए सकारात्मक कार्रवाई लागू कर तथा मुसलमानों को सशर्त एवं विरोधाभासी सांस्कृतिक स्वायत्तता प्रदान कर इन विभाजनों से निपटने की रणनीति अपनाई। हालांकि इस रणनीति ने समाज की गहरी कुरूपताओं को ज्यों का त्यों छोड़ दिया, फिर भी सामाजिक गतिशीलता ने राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक शक्ति तक पहुँच को लगातार व्यापक बनाया।

#### संदर्भ:

1. सज्जाद, बिहार में मुस्लिम राजनीति, पीपी। 271-72।
2. ठाकुर, द मेकिंग ऑफ लालू यादव एंड द अनमेकिंग ऑफ बिहार।
3. थॉमस ब्लॉम हैनसेन, द सैफरन वेव: डेमोक्रेसी एंड हिंदू नेशनलिज्म इन मॉडर्न इंडिया (न्यू जर्सी: प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस, 1999) और जाफ्रेलॉट, रिलिजन, कास्ट एंड पॉलिटिक्स इन इंडिया (दिल्ली: प्राइमस, 2010)

4. सज्जाद, बिहार में मुस्लिम राजनीति, पीपी। 274-318।
5. बेला भाटिया, 'द नक्सलाइट मूवमेंट इन सेंट्रल बिहार', इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली 40, नं. 15 (9 अप्रैल 2005) 1536-49.
6. ठाकुर, सुबाल्टर्न साहब।
7. यह और अगला पैराग्राफ वाल्टर हौसर, 'बिहार राजनीति में आम चुनाव 1996, प्रशासनिक शोष और अराजकता', आर्थिक और राजनीतिक साप्ताहिक संख्या 32 पर आधारित है। 41 (11 अक्टूबर 1997) 2600-01.
8. सज्जाद, बिहार में मुस्लिम राजनीति, पृष्ठ 282।
9. इबिद., पीपी। 297-98, पृ. 304.
10. हौसर, 'बिहार राजनीति में आम चुनाव 1996, प्रशासनिक शोष और अराजकता', पीपी। 2602-06।
11. सज्जाद, बिहार में मुस्लिम राजनीति, पृष्ठ 309।
12. इबिद., पृ. 301.
13. कांता मुरली, जाति, वर्ग और राजधानी (कैम्ब्रिज: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 2017) 186-92,197-99,205.
14. सज्जाद, बिहार में मुस्लिम राजनीति, पृ. 342.
15. फ्रेंकेल, 'बिहार में जाति, भूमि और प्रभुत्व: ब्राह्मणवादी सामाजिक व्यवस्था का विघटन', पृष्ठ 123।16. जोधका, 'जाति: यह अभी भी क्यों मायने रखता है?'
17. दीपा एस. 'रेड्डीज रिव्यू ऑफ विट्सो', डेमोक्रेसी अगेंस्ट डेवलपमेंट, एंथ्रोपोलॉजिकल क्वार्टरली 87, नं. 1 (शीतकालीन 2014) 269-79।
18. सुनीता लाल और शैबल गुप्ता, संस्करण, राज्य का पुनरुत्थान: बिहार की एक गाथा-पापिया घोष की स्मृति में निबंध (नई दिल्ली: मानक प्रकाशन, 2013)



INTERNATIONAL JOURNAL OF  
INTERPRETATION  
OBSERVATION & ANALYSIS